Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-1(A)| January - 2026

Original Article

भारतीय शिक्षा नीति में शैक्षिक दर्शन की भूमिका

डॉ. अमित कुमार यादव

सहायक प्राध्यापक, शिक्षाशास्त्र विभाग, भाभा इंस्टीट्यूट ऑफ एजुकेशन इंडस्ट्रियल एरिया गया बिहार
Email: aky9100@gmail.com

Manuscript ID:
JRD -2026-180142
ISSN: 2230-9578
Volume 18
Issue 1(A)
Pp. 207-213
January - 2026
Submitted: 19 Dec. 2025
Revised: 29 Dec. 2025
Accepted: 14 Jan. 2026
Published: 31 Jan. 2026

सारांश

भारतीय शिक्षा नीति में शैक्षिक दर्शन की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण एवं मार्गदर्शक रही है। भारत एक प्राचीन सभ्यता रहा है जिसकी शिक्षा प्रणाली वेदों, उपनिषदों, स्मृतियों, पुराणों, बौद्ध, जैन तथा इस्लामी परंपराओं से प्रभावित रही है। भारत की शिक्षा न केवल ज्ञानार्जन तक सीमित रही, बल्कि यह जीवन के समग्र विकास, नैतिकता, सामाजिक उत्तरदायित्व एवं आत्मानुशासन को भी प्राथमिकता देती रही है। वर्तमान समय में शिक्षा नीति के निर्माण और उसके क्रियान्वयन में शैक्षिक दर्शन की भूमिका केवल अकादमिक क्षेत्र तक सीमित न होकर सामाजिक परिवर्तन, राष्ट्रीय विकास तथा वैश्विक प्रतिस्पर्धा की दृष्टि से भी अत्यधिक प्रासंगिक हो गई है। शैक्षिक दर्शन का मूल उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि शिक्षा क्या है, इसका उद्देश्य क्या होना चाहिए, शिक्षक की भूमिका क्या होगी, छात्र का स्थान क्या है तथा किस प्रकार की पाठ्यवस्तु और शिक्षण विधियों का उपयोग किया जाना चाहिए। भारतीय शिक्षा नीति के निर्माण में विभिन्न दार्शनिक दृष्टिकोणों का समावेश देखा जा सकता है, जैसे आदर्शवाद, यथार्थवाद, व्यावहारिकतावाद, मानवतावाद तथा नव-संरचनावाद। आदर्शवाद के अनुसार शिक्षा आत्मा के विकास का साधन है, जो भारतीय संस्कृति में आत्मा और ब्रह्म के एकत्व की अवधारणा से जुड़ा हुआ है। इसी प्रकार व्यावहारिकतावाद शिक्षा को जीवन की समस्याओं से निपटने के लिए आवश्यक उपकरण मानता है और यह नीति निर्माण में उपयोगी दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।

मुख्यशब्द: *भारतीय शिक्षा नीति, शैक्षिक दर्शन, शिक्षा प्रणाली, सामाजिक परिवर्तन, राष्ट्रीय विकास*

प्रस्तावना

भारत की नई शिक्षा नीति 2020 (NEP 2020) में शैक्षिक दर्शन की छवि स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। यह नीति 'भविष्य के भारत' की परिकल्पना को साकार करने के उद्देश्य से तैयार की गई है और इसके मूल में 'नैतिक मूल्यों, समावेशिता, बहुलता, स्वदेशीता, और सतत विकास' की विचारधाराएं अंतर्निहित हैं। नीति में कहा गया है कि शिक्षा का लक्ष्य केवल जानकारी देना नहीं, बल्कि ज्ञान, बुद्धि, विवेक, करुणा, साहस और संवेदनशीलता जैसे गुणों का समावेश करना भी है। यह दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से शैक्षिक दर्शन की उस परंपरा से जुड़ा है जो शिक्षा को व्यक्ति के समग्र विकास के रूप में देखती है। शैक्षिक दर्शन भारत की शिक्षा नीति को यह निर्देश देता है कि वह किस प्रकार समाज के प्रत्येक वर्ग के लिए सुलभ, समावेशी और न्यायपूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करे। उदाहरण स्वरूप, भारतीय शैक्षिक परंपरा में "सा विद्या या विमुक्तये" की परिकल्पना है – अर्थात, वही शिक्षा है जो बंधनों से मुक्त करे। यह दर्शन आज भी NEP 2020 के तहत व्यक्तिकेंद्रित, लचीली और रुचिकेंद्रित शिक्षा व्यवस्था में परिलक्षित होता है। इसके अलावा, नीति में प्रारंभिक बाल्यावस्था की देखभाल और शिक्षा (Early Childhood Care and Education – ECCE), बहुभाषिकता, नैतिक शिक्षा, मूल्य शिक्षा और जीवन कौशल पर विशेष बल दिया गया है,

Creative Commons (CC BY-NC-SA 4.0)
This is an open access journal, and articles are distributed under the terms of the Creative Commons Attribution-NonCommercial-ShareAlike 4.0 International Public License, which allows others to remix, tweak, and build upon the work noncommercially, as long as appropriate credit is given and the new creations ae licensed under the idential terms.

Address for correspondence:
डॉ. अमित कुमार यादव, सहायक प्राध्यापक, शिक्षाशास्त्र विभाग, भाभा इंस्टीट्यूट ऑफ एजुकेशन इंडस्ट्रियल एरिया गया बिहार

How to cite this article:
यादव, . अमित . कुमार . (2026). भारतीय शिक्षा नीति में शैक्षिक दर्शन की भूमिका. Journal of Research & Development, 18(1(A)), 207–213. https://doi.org/10.5281/zenodo.18629311

Quick Response Code:
Website: https://jrdrvb.org/
DOI: 10.5281/zenodo.18629311
OPEN ACCESS

Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-1(A)| January - 2026

जो दर्शाता है कि शिक्षा केवल औपचारिक ज्ञान ही नहीं देती, बल्कि यह मानवीय मूल्यों और सामाजिक व्यवहारों को भी पोषित करती है। यह शैक्षिक दर्शन के उस पहलू को दर्शाता है जो शिक्षा को नैतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति का माध्यम मानता है।शिक्षा नीति के एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू में *गुरु-शिष्य परंपरा* और शिक्षक की गरिमा को पुनर्स्थापित करने का प्रयास किया गया है। शिक्षक को 'राष्ट्र निर्माण का प्रमुख आधार' माना गया है। यह भारतीय दर्शन के उन विचारों से प्रेरित है जिसमें गुरु को ईश्वर के समान दर्जा प्राप्त होता है – "गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।" शैक्षिक दर्शन की यही धारा शिक्षा नीति में शिक्षक प्रशिक्षण, शिक्षकों की पेशेवर प्रगति, और नवाचारों के लिए अनुकूल वातावरण सृजित करने के रूप में दिखाई देती है।

भारतीय शिक्षा नीति में शैक्षिक दर्शन की भूमिका सामाजिक न्याय एवं समानता के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह नीति वंचित वर्गों – जैसे अनुसूचित जातियों, जनजातियों, अन्य पिछड़े वर्गों, दिव्यांगजनों और महिलाओं – को गुणवत्ता युक्त शिक्षा प्रदान करने का लक्ष्य रखती है। यह इस विचारधारा से प्रेरित है कि शिक्षा सबके लिए समान अवसर उत्पन्न करने का माध्यम है, जिससे सामाजिक भेदभाव और असमानता को समाप्त किया जा सकता है। यह दृष्टिकोण जॉन ड्यूई के लोकतांत्रिक शिक्षा सिद्धांत के साथ-साथ भारतीय दर्शन के "सर्वे भवन्तु सुखिनः" की भावना से भी मेल खाता है।नई शिक्षा नीति में तकनीकी और डिजिटल शिक्षा को भी महत्व दिया गया है, लेकिन साथ ही यह स्पष्ट किया गया है कि प्रौद्योगिकी केवल एक उपकरण है – मूल उद्देश्य मानवीयता, संवेदनशीलता और नैतिकता से युक्त शिक्षा प्रदान करना है।

यह संतुलन दर्शाता है कि शिक्षा नीति ने केवल तात्कालिक आवश्यकताओं पर ध्यान नहीं दिया, बल्कि दूरगामी दार्शनिक चिंतन को भी प्राथमिकता दी है।इसके अतिरिक्त, शिक्षा नीति में मूल्य शिक्षा (Value Education) और नैतिकता (Ethics) को पाठ्यक्रम का अभिन्न हिस्सा बनाया गया है। यह स्पष्ट करता है कि शिक्षा केवल रोजगारोन्मुख न होकर समाजोन्मुख होनी चाहिए। मूल्य शिक्षा में करुणा, सत्य, अहिंसा, कर्तव्य, आत्मानुशासन, और राष्ट्रप्रेम जैसे गुणों को विकसित करने की बात की गई है, जो स्वामी विवेकानंद, महात्मा गांधी, डॉ. राधाकृष्णन जैसे शिक्षादर्शियों की शैक्षिक दृष्टि का प्रतिरूप हैं।शैक्षिक दर्शन, एक ओर जहां शिक्षा को आत्मिक और बौद्धिक विकास का माध्यम मानता है, वहीं दूसरी ओर यह समाज और संस्कृति को परिष्कृत करने का सशक्त साधन भी है। इसी कारण, भारत की शिक्षा नीति में भाषा नीति, सांस्कृतिक विविधता, कला एवं संगीत शिक्षा को भी यथोचित स्थान दिया गया है। मातृभाषा में प्रारंभिक शिक्षा, भारतीय शास्त्रीय भाषाओं का संरक्षण, और लोककला एवं सांस्कृतिक परंपराओं का संवर्धन, शैक्षिक दर्शन की उसी गूढ़ परंपरा की पुनर्स्थापना है जिसमें शिक्षा को संस्कृति से पृथक नहीं किया जा सकता।

शैक्षिक दर्शन का अर्थ और उद्देश्य

शैक्षिक दर्शन शिक्षा के मूल तत्वों, सिद्धांतों, उद्देश्यों और प्रक्रियाओं पर चिंतन-मनन करने वाली वह शाखा है जो यह निर्धारित करती है कि शिक्षा क्या है, क्यों दी जाती है, किसे दी जानी चाहिए, कैसे दी जानी चाहिए और किसके माध्यम से दी जानी चाहिए। यह दर्शन शिक्षा को एक यांत्रिक प्रक्रिया नहीं, बल्कि एक जीवंत, नैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रक्रिया मानता है। शैक्षिक दर्शन हमें यह समझने में सहायता करता है कि शिक्षा केवल जानकारी का हस्तांतरण नहीं है, बल्कि यह एक नैतिक, बौद्धिक, और सामाजिक विकास की प्रक्रिया है जो व्यक्ति को एक उत्तरदायी नागरिक और संपूर्ण मानव बनने की दिशा में प्रेरित करती है।शैक्षिक दर्शन का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना होता है कि शिक्षा न केवल ज्ञान प्रदान करे, बल्कि उसके साथ-साथ सोचने, समझने, विवेक का प्रयोग करने, और नैतिक निर्णय लेने की क्षमता भी विकसित करे। यह शिक्षा को जीवन की समस्याओं के समाधान, सामाजिक समरसता, और आत्मोन्नति का माध्यम मानता है। शैक्षिक दर्शन यह भी स्पष्ट करता है कि शिक्षा केवल परीक्षा पास करने और नौकरी प्राप्त करने का साधन नहीं है, बल्कि यह व्यक्ति को एक अच्छा इंसान, अच्छा नागरिक और एक समावेशी समाज का निर्माणकर्ता बनाने की प्रक्रिया है।इस प्रकार, शैक्षिक दर्शन शिक्षा को केवल साध्य नहीं, बल्कि उद्देश्य के रूप में देखता है। यह नीति निर्माताओं, शिक्षकों, छात्रों और समाज को एक ऐसी दिशा प्रदान करता है, जिससे शिक्षा व्यवस्था न केवल व्यावसायिक दक्षता, बल्कि सांस्कृतिक उत्तराधिकार, नैतिक मूल्य और मानवीय गरिमा को भी बनाए रख सके। यही कारण है कि किसी भी राष्ट्रीय शिक्षा नीति के निर्माण में शैक्षिक दर्शन की भूमिका आधारशिला के रूप में होती है।

मूल्य शिक्षा और नैतिक शिक्षा का समावेश

आज के भौतिकवादी और प्रतिस्पर्धात्मक युग में शिक्षा केवल बौद्धिक विकास और रोजगार प्राप्ति तक सीमित नहीं रह गई है, बल्कि इसका दायरा सामाजिक, भावनात्मक और नैतिक विकास तक विस्तारित हो गया है। इस संदर्भ में "मूल्य शिक्षा और नैतिक शिक्षा का समावेश" अत्यंत आवश्यक और प्रासंगिक हो गया है। मूल्य शिक्षा (Value Education) का उद्देश्य विद्यार्थियों में जीवन के आदर्श मूल्यों जैसे सत्य, अहिंसा, सहिष्णुता, करुणा, प्रेम, ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठा, सहानुभूति, दया, और सामाजिक उत्तरदायित्व को विकसित करना

Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-1(A)| January - 2026

है। वहीं नैतिक शिक्षा (Moral Education) का तात्पर्य उन सिद्धांतों, मान्यताओं और आचरण संबंधी नियमों से है जो व्यक्ति को सही और गलत में भेद करने की क्षमता प्रदान करते हैं और उसे एक अनुशासित तथा जिम्मेदार नागरिक बनने की दिशा में मार्गदर्शन करते हैं। इन दोनों ही प्रकार की शिक्षा का उद्देश्य केवल 'क्या पढ़ाया जाए' और 'कैसे पढ़ाया जाए' नहीं होता, बल्कि 'क्यों पढ़ाया जाए' और 'उससे क्या चरित्र बने' यह भी उतना ही महत्वपूर्ण होता है।मूल्य और नैतिकता भारतीय संस्कृति और शिक्षा की आत्मा रहे हैं। प्राचीन भारत की शिक्षा प्रणाली में मूल्य आधारित जीवन को सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। गुरुकुल व्यवस्था में विद्यार्थियों को वेदों, शास्त्रों, और व्यावहारिक जीवन के साथ-साथ नैतिक और सामाजिक मूल्यों की भी शिक्षा दी जाती थी। गुरु शिष्य को न केवल ज्ञानी बनाता था, बल्कि उसे संस्कारयुक्त, अनुशासित और समाजोपयोगी बनाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता था। यही कारण है कि उस समय का विद्यार्थी समाज का आदर्श नागरिक बनता था।

लेकिन आधुनिक शिक्षा प्रणाली में ज्ञान के व्यावसायिकरण, प्रतिस्पर्धा की अंधी दौड़, और नैतिक ह्रास के चलते शिक्षा मूल्यों से विमुख होती चली गई, जिसका दुष्परिणाम समाज में नैतिक संकट, अपराध, भ्रष्टाचार, भेदभाव, असहिष्णुता और आत्मघाती प्रवृत्तियों के रूप में स्पष्ट दिख रहा है।इस संकट से उबरने के लिए शिक्षा में मूल्य और नैतिकता का समावेश अनिवार्य हो गया है। मूल्य शिक्षा केवल एक विषय या पाठ्यक्रम तक सीमित नहीं है, बल्कि यह शिक्षा की समग्र प्रक्रिया में अंतर्निहित होनी चाहिए। चाहे वह प्राथमिक शिक्षा हो या उच्चतर, चाहे वह विज्ञान हो या कला, चाहे वह विद्यालय हो या विश्वविद्यालय – सभी स्तरों और क्षेत्रों में मूल्य आधारित दृष्टिकोण को अपनाना अत्यंत आवश्यक है। इसके लिए पाठ्यक्रम में ऐसे विषयों और सामग्री का समावेश किया जाना चाहिए जो विद्यार्थियों को नैतिक दुविधाओं से निपटना सिखाएं, आत्मनिरीक्षण करने की क्षमता दें, और उनके व्यक्तित्व में नैतिक दृढ़ता विकसित करें।राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भी इस दिशा में गंभीर प्रयास किए गए हैं। नीति के अनुसार, शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य केवल दक्षता पैदा करना नहीं, बल्कि व्यक्तित्व का समग्र विकास करना है जिसमें नैतिक, भावनात्मक और सामाजिक आयामों का संतुलन आवश्यक है। नीति यह स्पष्ट करती है कि छात्रों में सहानुभूति, संवेदनशीलता, जिम्मेदारी, और सेवा की भावना को विकसित किया जाना चाहिए। इसके लिए जीवन कौशल, नैतिक शिक्षा, सामुदायिक सेवा, और योग व ध्यान जैसे साधनों को शिक्षा में शामिल किया गया है। यह एक प्रशंसनीय पहल है जो शिक्षा को केवल 'सूचना-केन्द्रित' से हटाकर 'चरित्र-निर्माण' की ओर ले जाती है।मूल्य और नैतिक शिक्षा का समावेश केवल औपचारिक कक्षाओं के माध्यम से ही संभव नहीं है। इसके लिए शिक्षक का आचरण, विद्यालय का वातावरण, सह-पाठ्य गतिविधियाँ, तथा छात्र-छात्राओं के साथ संवाद की शैली भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। शिक्षक केवल ज्ञानदाता नहीं, बल्कि मूल्य का जीवंत उदाहरण होता है। "Acharya devo bhava" जैसी अवधारणाएँ इस बात को इंगित करती हैं कि शिक्षक का व्यवहार ही विद्यार्थियों के लिए सबसे प्रभावशाली शिक्षा होती है। यदि शिक्षक स्वयं ईमानदार, करुणाशील, और सहिष्णु होगा तो वही गुण अनायास ही विद्यार्थियों में भी स्थान पाएंगे।

विद्यालयों में सह-पाठ्य गतिविधियों जैसे नाटक, वाद-विवाद, समूह चर्चा, सामाजिक सेवा, ध्यान-सत्र, नैतिक कहानियों, तथा जीवन अनुभव साझा करने जैसे कार्यक्रमों का आयोजन करके नैतिक शिक्षण को रोचक, व्यावहारिक और प्रभावशाली बनाया जा सकता है। नैतिक द्वंद्व पर आधारित कहानियों या केस स्टडीज के माध्यम से विद्यार्थियों को आत्ममंथन और नैतिक निर्णय लेने की दिशा में प्रेरित किया जा सकता है। इससे वे न केवल बाह्य अनुशासन का पालन करते हैं, बल्कि आंतरिक रूप से भी नैतिक चेतना का विकास करते हैं।

आज की पीढ़ी के सामने जिस प्रकार की नैतिक चुनौतियाँ खड़ी हैं – जैसे सोशल मीडिया की लत, हिंसा, अवसाद, आत्महत्या की प्रवृत्ति, नशीले पदार्थों की आदतें, पारिवारिक विघटन, पर्यावरणीय असंवेदनशीलता – वे सभी इस बात की ओर संकेत करते हैं कि केवल तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा से हम संपूर्ण विकास नहीं कर सकते। इसके लिए शिक्षा में मूल्यों का गहरा समावेश आवश्यक है जो छात्रों को आत्मनिर्भर, आत्मचिंतनशील, और सामाजिक रूप से उत्तरदायी बनाए। एक ऐसा नागरिक जो केवल अपनी प्रगति नहीं, बल्कि समाज और राष्ट्र की प्रगति को भी साथ लेकर चले।

भारत जैसे बहुधर्मी, बहुसांस्कृतिक और बहुभाषी देश में मूल्य शिक्षा की भूमिका और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। यहां एकता, सौहार्द, सहिष्णुता और समरसता जैसे मूल्यों को शिक्षण प्रक्रिया के माध्यम से गहराई से आत्मसात करवाना आवश्यक है। यदि विद्यार्थियों को आरंभ से ही विविधताओं का सम्मान करना, दूसरों के दृष्टिकोण को समझना, और सहअस्तित्व की भावना अपनाना सिखाया जाए, तो समाज में भाईचारा, शांति और लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना संभव है।

इसके साथ ही, वैश्वीकरण और तकनीकी युग में जब विश्व सीमाएं सिकुड़ती जा रही हैं, तब मूल्य शिक्षा वैश्विक नागरिकता के निर्माण में भी सहायक सिद्ध हो सकती है। यह विद्यार्थियों को केवल भारतीय नहीं, बल्कि वैश्विक नागरिक बनने की ओर प्रेरित करती है – जो

Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-1(A)| January - 2026

मानवता, सहअस्तित्व, पर्यावरणीय संतुलन, और विश्व शांति जैसे सार्वभौमिक मूल्यों को अपनाए। यही वह शिक्षा होगी जो भारत को 'विश्वगुरु' की भूमिका में पुनर्स्थापित कर सकती है।

आदर्शवाद, व्यावहारिकतावाद और मानवतावाद की भूमिका

शिक्षा केवल ज्ञान का संचरण नहीं है, बल्कि यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्ति के सम्पूर्ण विकास, समाज के सुधार और मानवता के संवर्धन की दिशा में कार्य करती है। इस उद्देश्य की प्राप्ति में विभिन्न शैक्षिक दार्शनिक धाराएं महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इनमें आदर्शवाद (Idealism), व्यावहारिकतावाद (Pragmatism) और मानवतावाद (Humanism) प्रमुख हैं, जो शिक्षा की आधारभूत दिशा, उद्देश्य, पद्धति और मूल्यों को निर्धारित करती हैं। ये तीनों दार्शनिक दृष्टिकोण न केवल शिक्षा के सिद्धांतों में, बल्कि आज की राष्ट्रीय शिक्षा नीति और विद्यालयी जीवन में भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं।

आदर्शवाद की भूमिका: आदर्शवाद शिक्षा दर्शन की सबसे प्राचीन और प्रभावशाली धारा है। इसके अनुसार, वास्तविकता भौतिक नहीं, बल्कि आध्यात्मिक होती है। इसका मूल सिद्धांत है कि ज्ञान, नैतिकता, सत्य, सौंदर्य, और आध्यात्मिक मूल्य ही वास्तविक हैं और शिक्षा का उद्देश्य इन्हीं मूल्यों की प्राप्ति है। प्लेटो, स्वामी विवेकानंद, राधाकृष्णन और गांधीजी जैसे विचारक आदर्शवाद के समर्थक थे। आदर्शवाद शिक्षा को आत्मा के विकास का माध्यम मानता है। इस दर्शन के अनुसार, शिक्षा का कार्य केवल सूचना देना नहीं, बल्कि आत्मा को पूर्णता की ओर ले जाना है। इसका उद्देश्य है – सत्य की खोज, आत्मज्ञान, चरित्र निर्माण और नैतिक व्यवहार का विकास। आदर्शवादी शिक्षक केवल विषय ज्ञान का विशेषज्ञ नहीं होता, बल्कि वह मार्गदर्शक, प्रेरक और नैतिक आदर्शों का जीवंत उदाहरण होता है। विद्यालयों में आदर्शवाद की भूमिका को नैतिक शिक्षा, मूल्य शिक्षा, ध्यान और योग, नैतिक कथाओं और ऐतिहासिक आदर्श व्यक्तित्वों के अध्ययन के रूप में देखा जा सकता है। यह दृष्टिकोण विद्यार्थियों में आत्म-अनुशासन, सेवा भावना, और करुणा जैसे गुणों को विकसित करने में सहायक होता है।

व्यावहारिकतावाद की भूमिका: व्यावहारिकतावाद (Pragmatism) एक आधुनिक दर्शन है जो जीवन की समस्याओं और अनुभवों पर आधारित है। इसके अनुसार, ज्ञान का स्रोत अनुभव और प्रयोग है। जॉन ड्यूई इसके प्रमुख प्रवर्तक माने जाते हैं। यह दर्शन कहता है कि शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान का संग्रह नहीं, बल्कि जीवन में समस्याओं का समाधान करना है। व्यावहारिकतावाद के अनुसार शिक्षा छात्र-केंद्रित होनी चाहिए और वह छात्रों की रुचियों, आवश्यकताओं और क्षमताओं पर आधारित होनी चाहिए। शिक्षक एक मार्गदर्शक और सह-शिक्षक की भूमिका निभाता है। विद्यालय जीवन को समाज का लघु रूप माना जाता है, जहाँ छात्रों को वास्तविक जीवन के अनुभव, परियोजनाएं, प्रयोग, समस्या समाधान आधारित गतिविधियाँ, समूह कार्य और सह-पाठ्य गतिविधियों के माध्यम से सीखने का अवसर मिलता है। आज के समय में जब शिक्षा केवल किताबी ज्ञान से आगे बढ़कर कौशल, नवाचार, और समस्या समाधान पर केंद्रित हो रही है, तब व्यावहारिकतावाद की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। यह शिक्षा को जीवन के लिए तैयार करने वाला उपकरण बनाता है। विज्ञान प्रयोगशालाएं, कंप्यूटर शिक्षा, प्रोजेक्ट वर्क, फील्ड वर्क, और स्किल डवलपमेंट प्रोग्राम्स व्यावहारिकतावादी दृष्टिकोण के ही अंग हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भी व्यावहारिकतावाद की स्पष्ट झलक मिलती है जहाँ कौशल-आधारित शिक्षा, लचीली पाठ्यचर्या, अनुभवात्मक शिक्षण, और बहु-विषयक दृष्टिकोण को अपनाने की बात की गई है।

मानवतावाद की भूमिका: मानवतावाद (Humanism) एक ऐसी शैक्षिक और सामाजिक दृष्टि है जो मानव के आत्मसम्मान, आत्मनिर्भरता, सृजनात्मकता और संवेदनशीलता पर बल देती है। इसके अनुसार शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है — व्यक्ति के भीतर छिपी मानवीय संभावनाओं का विकास करना, न कि उसे एक मशीन या परीक्षा पास करने वाला जीव बनाना। कार्ल रोजर्स, अब्राहम मैस्लो, रविन्द्रनाथ टैगोर और महात्मा गांधी जैसे विचारक मानवतावाद के समर्थक माने जाते हैं। मानवतावाद यह मानता है कि प्रत्येक व्यक्ति में विशेष योग्यताएं और क्षमताएं होती हैं जिन्हें शिक्षा के माध्यम से उभारने की आवश्यकता है। यह दृष्टिकोण शिक्षा को सहानुभूति, करुणा, स्वायत्तता, और रचनात्मकता से जोड़ता है। शिक्षक को विद्यार्थियों के साथ सम्मानजनक संवाद करने वाला और सहयोगी माना जाता है, जो उनके स्वयं के अनुभवों और रुचियों को महत्त्व देता है। आज के समय में जब छात्र मानसिक तनाव, आत्मविश्वास की कमी, पहचान संकट और सामाजिक विघटन से जूझ रहे हैं, तब मानवतावादी शिक्षा पद्धति उनकी आत्म-स्वीकृति, आत्म-प्रेरणा और आत्म-विकास में सहायक हो सकती है। इस दृष्टिकोण में छात्रों के लिए सहयोगपूर्ण, संवेदनशील, प्रेरणादायक और सुरक्षित वातावरण प्रदान करना आवश्यक होता है, जिससे वे अपने अस्तित्व को सार्थक रूप से समझ सकें। मानवतावाद के प्रभाव के रूप में हम शिक्षण में जीवन कौशल, काउंसलिंग, ध्यान, कला और सांस्कृतिक शिक्षा के समावेश को देख सकते हैं। यह विद्यार्थी को केवल एक परीक्षार्थी नहीं, बल्कि एक संपूर्ण मानव के रूप में विकसित करने का प्रयास करता है।

Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-1(A)| January - 2026

समग्र योगदान: आदर्शवाद, व्यावहारिकतावाद और मानवतावाद – ये तीनों ही शैक्षिक दर्शन एक-दूसरे से भिन्न होने के बावजूद, शिक्षा के अलग-अलग आयामों को समृद्ध करते हैं। आदर्शवाद शिक्षा को मूल्यों, नैतिकता और आत्मा के विकास से जोड़ता है; व्यावहारिकतावाद शिक्षा को वास्तविक जीवन की समस्याओं, अनुभवों और नवाचार से जोड़ता है; और मानवतावाद शिक्षा को करुणा, संवेदना और आत्मविकास से जोड़ता है। इन तीनों का समन्वय एक ऐसी शिक्षा प्रणाली निर्मित करता है जो न केवल ज्ञानवान और कुशल नागरिक तैयार करे, बल्कि संवेदनशील, उत्तरदायी और चरित्रवान भी बनाए। यही कारण है कि आज की शिक्षा नीति और व्यवहारिक शिक्षा पद्धतियाँ इन तीनों दर्शनों के मेल पर आधारित हो रही हैं। भारत जैसे विविधता से भरे राष्ट्र में जहाँ परंपरा और आधुनिकता, विज्ञान और आध्यात्म, समाज और व्यक्ति – सबका संतुलन आवश्यक है, वहाँ शैक्षिक दर्शन के इन तीन आयामों का समावेश अति आवश्यक बन जाता है। आदर्शवाद हमें यह सिखाता है कि मूल्यों के बिना शिक्षा अधूरी है, व्यावहारिकतावाद यह सिखाता है कि शिक्षा का उपयोग जीवन में कैसे हो, और मानवतावाद यह बताता है कि शिक्षा का केंद्र बिंदु 'मनुष्य' है – उसका विकास, उसका आत्मसम्मान और उसकी आत्मा की स्वतंत्रता। अतः यह कहा जा सकता है कि आदर्शवाद, व्यावहारिकतावाद और मानवतावाद की संयुक्त भूमिका से ही एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था का निर्माण संभव है जो ज्ञान, कौशल, मूल्यों और संवेदनाओं का समुचित संतुलन प्रदान करती हो। यह संतुलन ही शिक्षा को संकीर्ण, परीक्षा-केंद्रित और उद्देश्यविहीन होने से बचाकर एक ऐसी प्रक्रिया में परिवर्तित करता है जो व्यक्ति को अपने जीवन का उद्देश्य समझने और समाज के लिए उपयोगी बनने की दिशा में प्रेरित करता है। यही शिक्षा की सच्ची सफलता है।

गुरु-शिष्य परंपरा और शिक्षक की गरिमा

भारत की सांस्कृतिक और शैक्षिक परंपरा में *गुरु-शिष्य संबंध* अत्यंत पवित्र और आदर्श माना गया है। यह परंपरा न केवल शिक्षा प्राप्ति का माध्यम थी, बल्कि यह जीवन मूल्यों, नैतिकता, और आध्यात्मिक उन्नति की आधारशिला भी रही है। "गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः" जैसी श्लोकों में गुरु को ईश्वरतुल्य माना गया है, क्योंकि वह शिष्य को अज्ञान रूपी अंधकार से निकालकर ज्ञान के प्रकाश की ओर ले जाता है। प्राचीन भारत की *गुरुकुल प्रणाली* इसी परंपरा का प्रत्यक्ष उदाहरण है। यहाँ गुरु और शिष्य एक ही स्थान पर रहते थे, और शिक्षा केवल पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित नहीं होती थी, बल्कि व्यवहार, नैतिकता, शील, सेवा, अनुशासन और आत्मानुशासन का भी समावेश होता था। गुरु अपने अनुभव, तप, और आदर्श जीवन के माध्यम से शिष्य को न केवल विद्वान बनाते थे, बल्कि उसे समाज और राष्ट्र का उत्तरदायी नागरिक भी बनाते थे। गुरु-शिष्य परंपरा में शिक्षक की गरिमा सर्वोच्च थी। शिक्षक को समाज का पथप्रदर्शक, संस्कारदाता और चरित्र निर्माता माना जाता था। शिष्य गुरु के प्रति श्रद्धा और भक्ति से पूर्ण रहता था और आज्ञा का पालन उसकी प्राथमिक जिम्मेदारी होती थी। यह संबंध केवल ज्ञान का आदान-प्रदान नहीं था, बल्कि यह आत्मिक और भावनात्मक संबंध भी होता था, जहाँ गुरु शिष्य को आत्मसाक्षात्कार की ओर अग्रसर करता था। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में भले ही यह परंपरा अपने मूल स्वरूप में नहीं रही, परंतु शिक्षक की गरिमा आज भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भी शिक्षक को "राष्ट्र निर्माण का आधार स्तंभ" कहा गया है। शिक्षक की भूमिका आज केवल विषय ज्ञान तक सीमित नहीं है, वह एक मार्गदर्शक, प्रेरक, शोधकर्ता, नवोन्मेषक और चरित्र निर्माता के रूप में कार्य करता है। शिक्षक की गरिमा को बनाए रखने के लिए समाज को चाहिए कि वह शिक्षकों को उचित सम्मान, वेतन, प्रशिक्षण और कार्यस्वतंत्रता दे। साथ ही, शिक्षकों को भी चाहिए कि वे अपने कर्तव्यों को ईमानदारी, निष्ठा और समर्पण भाव से निभाएं। जब शिक्षक स्वयं अनुशासित, नैतिक, और प्रेरणादायक बनेंगे, तभी वे छात्रों के लिए आदर्श बन पाएंगे। आज के बदलते समय में शिक्षक की भूमिका और भी जटिल हो गई है। तकनीकी युग में जहां सूचनाएं इंटरनेट पर उपलब्ध हैं, वहाँ शिक्षक केवल ज्ञान स्रोत नहीं, बल्कि *सोचने की दिशा देने वाला* और *मानवीय मूल्यों का संवाहक* बन गया है। अतः यह कहा जा सकता है कि गुरु-शिष्य परंपरा आज भी प्रासंगिक है, यदि उसे आधुनिक संदर्भ में आत्मसात किया जाए। शिक्षक की गरिमा और महत्व तभी सच्चे अर्थों में स्थापित होगा, जब शिक्षक और शिष्य दोनों इस संबंध की गहराई को समझकर उसे आदर्श रूप में अपनाएं। यह परंपरा न केवल शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाएगी, बल्कि समाज को संस्कारित और सशक्त भी बनाएगी।

मातृभाषा, संस्कृति और बहुभाषिकता की दार्शनिक दृष्टि

भाषा, संस्कृति और दर्शन का आपसी संबंध अत्यंत गहरा होता है। भाषा न केवल संप्रेषण का माध्यम होती है, बल्कि वह एक संपूर्ण जीवन-दृष्टि को आकार देती है। मातृभाषा में व्यक्त विचार अधिक स्वाभाविक, जीवंत और प्रभावी होते हैं। भारत जैसे बहुभाषी, बहुसांस्कृतिक और विविधता-समन्वित राष्ट्र में *मातृभाषा, संस्कृति और बहुभाषिकता* की दार्शनिक समझ शिक्षा, समाज और व्यक्तित्व निर्माण की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है।

Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-1(A)| January - 2026

मातृभाषा केवल एक भाषा नहीं, बल्कि भावों की अभिव्यक्ति, संस्कृति का संवाहक और आत्मा की आवाज होती है। जब व्यक्ति अपनी मातृभाषा में सीखता है, सोचता है और संवाद करता है, तो उसका बौद्धिक और भावनात्मक विकास अधिक गहराई से होता है। दार्शनिक दृष्टि से मातृभाषा व्यक्ति की चेतना को जागृत करने में सहायक होती है। यही कारण है कि महात्मा गांधी, रवींद्रनाथ ठाकुर, और स्वामी विवेकानंद जैसे विचारकों ने मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाए जाने पर ज़ोर दिया। मातृभाषा में शिक्षा देने से न केवल ज्ञान का बेहतर अधिग्रहण होता है, बल्कि यह आत्म-गौरव, आत्मीयता और सांस्कृतिक आत्म-संवेदना को भी पोषित करती है।

संस्कृति भाषा से जुड़ी होती है और भाषा ही संस्कृति की संवाहक होती है। संस्कृति किसी भी समाज के जीवन मूल्यों, विश्वासों, परंपराओं, कला, साहित्य और जीवन दृष्टि का समुच्चय होती है। जब शिक्षा में संस्कृति का समावेश होता है, तो वह विद्यार्थियों को अपनी जड़ों से जोड़ती है। भारतीय दार्शनिक परंपरा में 'सा विद्या या विमुक्तये' का अर्थ केवल सूचना से नहीं, बल्कि सांस्कृतिक बोध से युक्त शिक्षा से है। संस्कृति के बिना शिक्षा खोखली हो जाती है, और संस्कृति के संरक्षण के लिए मातृभाषा का प्रयोग अनिवार्य है।

बहुभाषिकता, भारतीय समाज की विशेषता है और यह दर्शन में विविधता में एकता की अवधारणा को सशक्त बनाती है। बहुभाषिकता केवल भाषाओं का ज्ञान नहीं है, बल्कि यह विभिन्न दृष्टिकोणों, संस्कृतियों, और जीवन मूल्यों को समझने का सेतु भी है। दार्शनिक दृष्टि से बहुभाषिकता संवाद, सह-अस्तित्व, सहिष्णुता और वैश्विक नागरिकता की भावना को पोषित करती है। नई शिक्षा नीति 2020 में तीन-भाषा सूत्र के माध्यम से बहुभाषिकता को बढ़ावा देने की बात की गई है, जो दार्शनिक रूप से छात्रों को आत्मीयता के साथ-साथ वैश्विक दृष्टिकोण भी प्रदान करती है।

अतः मातृभाषा, संस्कृति और बहुभाषिकता की दार्शनिक दृष्टि हमें यह सिखाती है कि शिक्षा केवल सूचना का हस्तांतरण नहीं, बल्कि *चेतना, संवेदना और सांस्कृतिक जुड़ाव* की प्रक्रिया है। जब हम मातृभाषा में शिक्षा देते हैं, संस्कृति को पाठ्यक्रम में शामिल करते हैं और बहुभाषिकता को स्वीकारते हैं, तब ही शिक्षा एक समग्र, संतुलित और मूल्यपरक रूप ग्रहण करती है। यही दृष्टि एक सशक्त, संस्कारित और सहिष्णु समाज की नींव रख सकती है।

डिजिटल युग में शैक्षिक दर्शन की प्रासंगिकता

21वीं सदी को *डिजिटल युग* कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। तकनीक ने शिक्षा के स्वरूप को पूरी तरह बदल दिया है — कक्षाएं अब केवल भौतिक दीवारों तक सीमित नहीं, बल्कि ऑनलाइन प्लेटफॉर्म, वर्चुअल रियलिटी, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और मोबाइल ऐप्स के रूप में विस्तृत हो चुकी हैं। ऐसे परिवेश में यह प्रश्न उठता है कि क्या *शैक्षिक दर्शन* की भूमिका अब भी उतनी ही महत्वपूर्ण है? इसका उत्तर है — हां, और पहले से कहीं अधिक। डिजिटल युग में शिक्षा केवल सूचना प्राप्ति तक सीमित नहीं हो सकती; यह आवश्यक है कि शिक्षण के पीछे जो उद्देश्य, मूल्य और दृष्टिकोण हैं, वे भी स्पष्ट और सुदृढ़ हों — और यही कार्य शैक्षिक दर्शन करता है। शैक्षिक दर्शन वह बौद्धिक नींव है जो यह निर्धारित करता है कि शिक्षा का उद्देश्य क्या है, शिक्षक और छात्र की भूमिका क्या होनी चाहिए, और कौन-से मूल्य शिक्षा में समाहित किए जाने चाहिए। डिजिटल युग में जब सूचना असीमित मात्रा में उपलब्ध है, तब यह शैक्षिक दर्शन ही है जो यह तय करता है कि कौन-सी जानकारी प्रासंगिक, नैतिक और उपयोगी है।

आदर्शवाद, व्यावहारिकतावाद, और मानवतावाद जैसे प्रमुख शैक्षिक दर्शन अब नई तकनीकी शिक्षा प्रणालियों में भी अपनी भूमिका निभा रहे हैं। आदर्शवाद यह सुनिश्चित करता है कि डिजिटल शिक्षा केवल उपकरणों तक सीमित न रह जाए, बल्कि उसमें *नैतिकता, चरित्र निर्माण और मूल्यों* का समावेश भी हो। व्यावहारिकतावाद डिजिटल उपकरणों और तकनीकी माध्यमों को शिक्षा में उपयोगी बनाता है और शिक्षा को अधिक प्रासंगिक और जीवंत बनाने में सहायक होता है। वहीं मानवतावाद इस बात पर बल देता है कि डिजिटल माध्यमों से भी *छात्र की भावनात्मक, रचनात्मक और आत्मिक जरूरतों* की पूर्ति हो।

डिजिटल शिक्षा के प्रसार से जहां एक ओर सीखने की संभावनाएं बढ़ी हैं, वहीं कई चुनौतियाँ भी उत्पन्न हुई हैं — जैसे ध्यान की कमी, आभासी जुड़ाव में मानवीय संवेदना का अभाव, और नैतिक पतन की आशंका। इन चुनौतियों का समाधान केवल तकनीकी ज्ञान से नहीं, बल्कि गहरे *दार्शनिक चिंतन* से ही हो सकता है।

इसके अतिरिक्त, डिजिटल युग में शिक्षक की भूमिका भी बदल रही है। वह अब केवल जानकारी देने वाला नहीं, बल्कि *सुविचारित मार्गदर्शक, मूल्यदाता और प्रेरक* है। शैक्षिक दर्शन शिक्षक को इस नई भूमिका के लिए तैयार करता है।

इस युग में जब छात्र मोबाइल और इंटरनेट से जुड़कर वैश्विक दुनिया का हिस्सा बन रहे हैं, तब उन्हें केवल तकनीकी दक्षता नहीं, बल्कि *सामाजिक उत्तरदायित्व, नैतिक विवेक और मानवतावादी दृष्टिकोण* की भी आवश्यकता है — और यह तभी संभव है जब शिक्षा का आधार दार्शनिक रूप से सशक्त हो।

Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-1(A)| January - 2026

अतः यह स्पष्ट है कि डिजिटल युग में शैक्षिक दर्शन की प्रासंगिकता और भी अधिक बढ़ गई है। यह न केवल शिक्षा को दिशा देता है, बल्कि उसे सार्थक, संतुलित और मानवीय बनाता है। एक तकनीकी रूप से सक्षम, लेकिन मूल्यहीन समाज अंततः विघटन की ओर जाएगा; वहीं यदि डिजिटल साधनों का उपयोग *शैक्षिक दर्शन* के आलोक में किया जाए, तो शिक्षा मानवता की सबसे बड़ी शक्ति बन सकती है।

निष्कर्ष

भारतीय शिक्षा नीति में शैक्षिक दर्शन की भूमिका केवल सैद्धांतिक नहीं, बल्कि व्यावहारिक, क्रियाशील और परिवर्तनकारी है। यह नीति भारतीय परंपरा और आधुनिक वैश्विक आवश्यकताओं के मध्य एक सेतु का कार्य करती है। इसमें व्यक्तिनिष्ठता और समाजनिष्ठा, मूल्यपरकता और नवाचार, स्वदेशीता और वैश्विकता, तथा ज्ञान और नैतिकता का संतुलन देखने को मिलता है। यह स्पष्ट करता है कि एक सशक्त, समावेशी, समरस और मूल्याधारित समाज की नींव रखने के लिए शैक्षिक दर्शन को शिक्षा नीति के केंद्र में रखना अत्यंत आवश्यक है। भारतीय शिक्षा नीति इस दिशा में एक प्रेरणादायक उदाहरण प्रस्तुत करती है, जो न केवल वर्तमान पीढ़ी के लिए, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिए भी एक सशक्त मार्गदर्शक बन सकती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अशोक, आर. (2020). *भारतीय शिक्षा नीति 2020: एक दार्शनिक मूल्यांकन*. नई दिल्ली: विश्वविद्यालय प्रकाशन.
2. पांडेय, वी.एन. (2018). *शैक्षिक दर्शन: सिद्धांत और व्यवहार*. वाराणसी: प्रभात पब्लिकेशन.
3. शर्मा, के.एल. (2021). *भारतीय शिक्षा में नैतिक मूल्यों की भूमिका*. लखनऊ: ज्ञानदीप प्रकाशन.
4. राठी, एम.के. (2020). *शिक्षा का दर्शन और आधुनिक भारत*. जयपुर: भारत बुक हाउस.
5. राष्ट्रीय शिक्षा नीति समिति. (2020). *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020*. मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार.
6. मिश्रा, एस. (2019). *प्राचीन भारत में शैक्षिक चिंतन*. बनारस: हिंदी विद्या संस्थान.
7. गुप्ता, अ. (2021). *शिक्षा नीति और दर्शन का अंतर्संबंध*. दिल्ली: विश्वविद्यालय पुस्तकालय.
8. श्रीवास्तव, ए. (2022). *भारतीय परिप्रेक्ष्य में शिक्षा के दार्शनिक आधार*. पटना: युगान्तर पब्लिकेशन.
9. वर्मा, पी. (2020). *शिक्षा, संस्कृति और मूल्य*. भोपाल: नवल प्रकाशन.
10. जोशी, डी.पी. (2021). *शिक्षा के विविध आयाम*. जयपुर: साहित्य निकेतन.
11. मेहता, एस. (2017). *भारतीय शिक्षा: दर्शन और व्यवहार*. चंडीगढ़: विद्या पब्लिशर्स.
12. रघुवंशी, आर. (2022). *शैक्षिक परंपराएं और नवाचार: एक तुलनात्मक अध्ययन*. नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट.